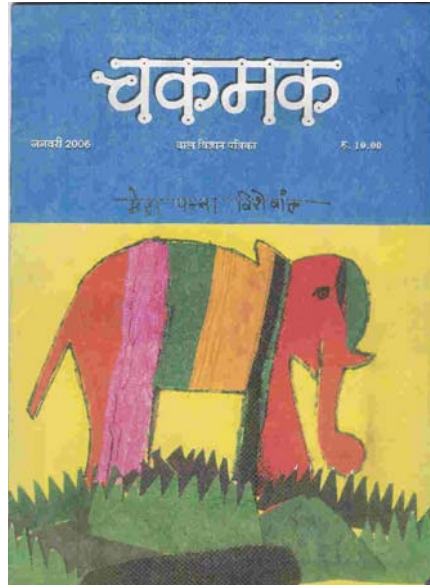


बाल पत्रिका चकमक की समीक्षा

□ पल्लव

बाल पत्रिकाओं की स्थिति और गति की बात छिपी हुई नहीं है, अक्सर हिन्दी में अच्छी बात पत्रिकाओं के न होने का अफसोस किया जाता है। यह आश्चर्य की बात है कि लघु पत्रिकाओं के नये शानदार उभार के दिनों में भी बाल पत्रिकाओं की स्थिति जस की तस है और विद्वानों का स्यापा भी चालू है। स्थिति इतनी विकट है कि प्रो. कृष्णकुमार भी यही कह रहे हैं - 'आज तो रेगिस्तान है' (शिक्षा विमर्श, जुलाई-दिसम्बर, 2005, पृ. 186), इस रेगिस्तान में उन्हें हरियाली कहीं नजर आई तो दैनिक भास्कर के पाक्षिक परिशिष्ट 'बाल भास्कर' में। स्थिति इतनी विकट तो नहीं है और परिचय-प्रचार की कमी को कारण मानें,



यह भी ठीक नहीं होगा। दरअसल जिस बाल पत्रिका की यहां चर्चा की जा रही है उसके अप्रैल 2006 अंक में प्रो. कृष्ण कुमार की कहानी प्रकाशित हुई है। चकमक। शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य कर रहे स्वैच्छिक संगठन 'एकलव्य' की मासिक बाल पत्रिका। यहां से दो पत्रिकाएं और प्रकाशित होती हैं - 'स्रोत' और 'संदर्भ'। इन पत्रिकाओं की पहचान मुख्यतः वैज्ञानिक चेतना का प्रचार-प्रसार और विकास करने से बनी है। 'स्रोत' और 'संदर्भ' तो शुद्धतः विज्ञान की पत्रिकाएं हैं लेकिन 'चकमक' - बाल विज्ञान पत्रिका के तमगे के बावजूद लगभग सम्पूर्ण बाल पत्रिका है। सम्पूर्णता के मापदण्ड भी यहां सामने आने चाहिए, आखिर वे कौनसी चीजें हैं जो बच्चों की पत्रिका को सच्चे अर्थों में बाल पत्रिका बनाती हैं। मोटे तौर पर मैं अपने लिए (यदि मैं बच्चा हो जाऊं) जिन बातों की अपेक्षा बाल पत्रिका में करूंगा, वे ये हैं - मनोरंजन, कल्पनात्मक सघनता, प्रश्नाकुलता, बाल सुलभ प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्बन करती रचनाएं और सामाजिकता। बचपन में मुझे शायद इन्हीं कारणों से

'बाल भारती' अधिक प्रिय थी जबकि 'नंदन' 'बाल हंस' और थोड़े दिनों तक तो 'पराग' भी मुझे सुलभ थीं। मनोरंजन तो किसी भी साहित्य की पहली और अनिवार्य शर्त है, उसके बगैर कोई पढ़े ही क्यों? कल्पना किसी भी बाल साहित्य में इसलिए जरूरी है कि कल्पना ही वह स्पेस देती है जहां बच्चा परंपराओं से भिड़कर-जूझकर अपना रास्ता खुद चुन सकता है। प्रश्न किया जाना किसी भी लोकतान्त्रिक समाज के लिए जीवित होने की पहचान है, अगर सवाल ही नहीं किए जाएंगे तो बदलाव कैसे होगा? चुप रहो, बड़े जो कहते हैं वह ठीक है, यह सृष्टि विधाता की बनाई है और इसे कोई नहीं बदल सकता इत्यादि स्वर 'चन्दामामा' और 'गुडिया' जैसी सात्विक पत्रिकाएं देती ही थीं।

हमारे दिवंगत भइया जयप्रकाश भारती का 'नंदन' भी इनसे बहुत अलग नहीं था। 'चकमक' के कोई बीस अंक मेरे समक्ष हैं, नये-पुराने और कुछ लगातार भी। वैज्ञानिकता, प्रश्नाकुलता और बाल सुलभ प्रवृत्तियों के प्रतिबिम्बन जैसी कसौटियों पर प्रथम दृष्ट्या आकृष्ट करने वाली 'चकमक' पिछले इक्कीस वर्षों से निकल रही है। विनोद रायना, अंजलि नरोना, स्वयं प्रकाश और सुशील शुक्ल की सम्पादकीय टीम और राकेश खत्री की सज्जा - सुशील जोशी के विज्ञान परामर्श के साथ। चकमक का पहला गुण है अपने बाल पाठकों की सहभागिता। चकमक का कोई भी अंक उठाकर देखा जाए लगभग पच्चीस फीसदी पृष्ठों पर छोटे पाठकों की रचनाएं या चित्र होते हैं, इनमें अक्सर कवर (रंगीन) पृष्ठ भी शामिल होते हैं। शीर्षक बताइए, अधूरी कहानी और वर्ग पहेली जैसे काम तो लगभग हर बाल पत्रिका करती है लेकिन उन्हें इस तरह इन्वॉल्व करना सचमुच चकित करता है। इन चित्रकारों - रचनाकारों में तीन-चार

साल के बच्चे भी शामिल हैं।

चकमक की सामग्री में मुख्यतः कहानियां, वैज्ञानिक प्रयोग, खेल प्रयोग, विशेष लेख और कुछ नियमित स्थाई स्तंभ होते हैं। पिछले कुछ अंकों में आई कहानियों को देखा जाए। फरवरी मार्च, 2005 (संयुक्तांक) में एक छोटी-सी चित्रकथा छपी है - 'पापा सुस्सू...'. कहानी यह है कि एक छोटी लड़की अपने मम्मी-पापा के साथ बाहर जा रही है और बस में बैठने के बाद वह लगातार कह रही है कि पापा सू सू आ रही है। मम्मी-पापा ध्यान नहीं देते और आखिरकार वह किसी की परवाह किए बिना फ्राक उठाकर सू सू कर ही देती है। उसके सू सू की बाढ़ में सब बह जाते हैं। सतीनाथ

षडंगी की यह कथा हमारे भीतर तक धंसे जेंडर भेद के संस्कारों को चोट पहुंचाती है। अगर समाज में स्त्री-पुरुष बराबर हैं तो क्या कारण है स्त्रियों से संबंधित सार्वजनिक (बल्कि निजी भी) सुविधाओं पर ध्यान नहीं दिया जाता। एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा, राजधानी दिल्ली में नगर निगम द्वारा बनवाए सार्वजनिक शौचालयों की संख्या 670 थी, जिनमें केवल 70 महिला शौचालय थे और सर्वेक्षण के दौरान आधे बन्द थे। (स्त्री मुक्ति, अप्रैल 2006, पृष्ठ 30)। दूसरी बात यह कि कुदरती जरूरतों के संदर्भ में भी स्त्री-पुरुषों के साथ समानता नहीं है। बच्चा यह सब जानता है लेकिन खुलकर कौन कहता है ? चलने दो।

एक और कहानी लें। जून 2005 के अंक में सुप्रसिद्ध कहानीकार (बड़ों के) असगर वजाहत की कहानी छपी है - 'सबसे बड़ा योद्धा'। लोककथा सरीखी इस कहानी में शक्ति के दंभ में चूर एक योद्धा को साधारण किसान असलियत बताता है। बच्चों में शौर्य और सैन्यीकरण की 'आदर्श भावनाएं' विकसित करना हमारे यहां परंपरा है और इसे ही अनुशासन समझा गया है। इसी के चलते प्रेम, समानता और सौहार्द जैसे मूल्य तिरोहित होते जाते हैं और पता भी नहीं चलाता। शक्ति के इसी घमण्डी विचार को असगर जाहत की कहानी बहुत सुन्दरता से असलियत दिखाती है। तीसरी कहानी जो मुझे चर्चा के लिए बेहद जरूरी लगी, वह है 'बत्ती बदल गई', नवम्बर 2005 अंक में पोइली सेन गुप्ता की यह कहानी संभवतः बांग्ला में थी जिसका अनुवाद मीरा कान्त ने किया है। समीर नाम के दो लड़के अकस्मात् मिलते हैं। एक सम्पन्न घर का है तो दूसरा फुटपाथ पर अखबार

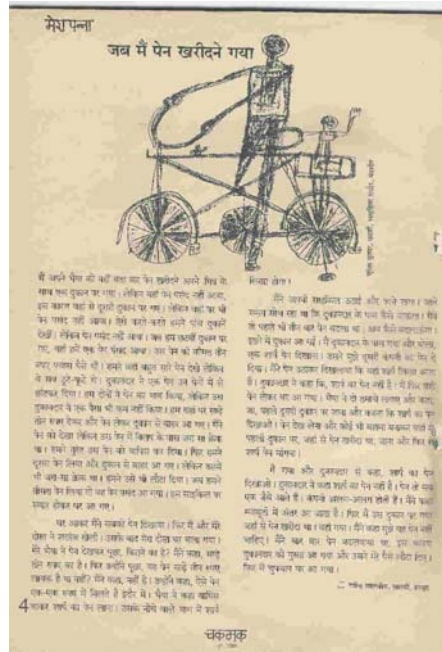
बेचता हुआ। दोनों में एक दो मुलाकातें होती हैं। तीसरी मुलाकात में समीर नम्बर दो अखबार की सुखी बताता है कि मेरठ के दंगों में बहुत से मुसलमान मारे जा रहे हैं और फिर कहता है मैं मुस्लिम समीर हूं, मेरे परिवार के सभी लोग मेरठ में हैं। अगले दिन वह फुटपाथ पर नहीं था और समीर नम्बर एक को कोई बताने वाला नहीं है कि वह कहां गया, कोई अखबार भी नहीं। हिन्दू मुस्लिम भाइचारे और सौहार्द पर सैकड़ों कहानियां बड़ों-छोटों के लिए लिखी जाती हैं। ऐसी कहानी और खासकर बच्चों के लिए मैंने नहीं पढ़ी जहां कोई बेचैनी पैदा हो। बच्चों को 'अच्छे नागरिक' बनाने का प्रयास कर रही बाल पत्रिकाएं ऐसी खराब बातें थोड़े ही सिखाएंगी।

लेकिन दिक्कत यहीं है। दिक्कत यह है कि बच्चा सवाल न करे, कोई सवाल न करे, जनता सवाल न करे। मरने दीजिए लोगों को, डूबने दीजिए आदिवासियों को। हम बच्चों को सचिन के शतकों की सूची बताएंगे और बड़ों को जेसिका हत्याकाण्ड की असलियत। व्यवस्था इसी तरह नागरिकों का अनुकूलन करती है। हास्य और मनोरंजन की कहानियां भी यहां इसी तरह की हैं जो गुदगुदाएं ही नहीं बल्कि कुछ सोचने की जरूरत भी पैदा करें।

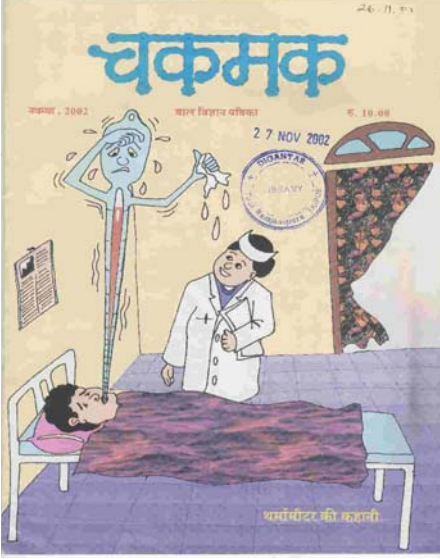
इधर कुछ अरसे से चकमक ने बड़ों के या बड़े कवियों से अपने पाठकों के लिए कविताएं लिखवाई हैं। वहीं बाल भवन, नई दिल्ली द्वारा आयोजित कविता कार्यशाला में कई बच्चों द्वारा मिलकर

लिखी गई कविताएं भी अक्सर इन अंकों में आई हैं। शुरुआत एक पुराने अंक (अप्रैल 2003) में छपी शादाब आलम की कविता 'बेर के कांटे' से करते हैं। यह छोटी सी कविता पूरी ही उद्धृत है -

देख शेर को हाथ झटकते,
बोले बन्दर राम।
दुखा हाथ जो तेरा भैया,
किया कौन-सा काम ?
आंसू भरकर आंखों में तब,
बोला उससे शेर।
चुभा हाथ में कांटा, जब में
तोड़ रहा था बेर!!



बच्चों के लिए ऐसी ही रचनाएं होनी चाहिएं, जो आसानी से मुख पर चढ़ सके, आडम्बरहीन और उपदेशात्मकता से दूर हों। मार्च 2006 के अंक में रूथ रस्तोगी ने भी ऐसी छोटी-छोटी, प्यारी-प्यारी कविताएं लिखी हैं- “छोटे बादल/मोटे बादल। बदल रहे हैं भेस !/देखो बादल/आसमान में/लगा रहे हैं रेस ! ” इसी



क्रम में तेजी ग्रोवर की कविता ‘पान की डलिया’ (फरवरी 2006) और रमेश चन्द्र शाह की ‘लड़का सचमुच गन्दा है’ (सितम्बर 2005) बेहद रुचिकर हैं। राजेश जोशी की कविता ‘पतंग’ नवम्बर 2005 के अंक में छपी है। हमें ऐसी सैकड़ों कविताएं

चाहिएं राजेश जी। एक अंश -

‘आसमान जब
खुला खुला हो
और हवा हो
जब मस्ती में
गूँथ गूँथ कर
सपनों की
इक लम्बी डोरी
दूर गगन में
इसे उड़ाओ।’

यद्यपि राजेश जी आह्वान कर रहे हैं पर अगर वे भी पतंग उड़ाने के इस खेल में शामिल हो जाते, तो क्या बात थी। ध्यान देने लायक ऐसी कविताओं में सितम्बर 2005 में छपी ‘ये बात समझ में नहीं आई’ (रचनाकार का नाम नहीं) और पाकिस्तानी कवयित्री सूफी तबस्सुम की ‘टोट बटोट के मुर्गे’ (दिसम्बर 2005) भी शामिल की जा सकती है। लेकिन गड़बड़ कविताएं न हो, ऐसा नहीं है। नवम्बर 2002 के अंक में राष्ट्रबन्धु की कविता ‘बस्ता

पढ़ते हैं -

सारा घर भर हंसता।
इतना हल्का बस्ता।।
के जी वन में पढ़ते।
श्री के जी ले चढ़ते।।
कैसे कटता रस्ता।
करता हालत खस्ता।।
हम सब चुप हैं सहते।
शिक्षकजी हैं कहते।।
अपना बोझा ढोना।
क्यों हो रोना धोना।।
यह मजबूत बनाता।
श्रम से जुड़ता नाता।।

ठीक है श्रम संस्कृति का प्रचार प्रसार बस्ते से ही होगा। हां, यदि इसे व्यंग्य कहते हैं तो ऐसा सपाट व्यंग्य किस काम का। इसी अंक में एक कविता है ‘क्यों होता है दंगा’। कविता के अंश देखें -

गोलू पूछ रहा भोलू से
समझा भोलू
दंगा करने करवाने का
मतलब क्या है ?
क्या यह कोई
छिपा हुआ दानव है भाई,
जो लोगों के आगे-पीछे घूम रहा है ?
जिसके डर से लोग भागते
जिसके डर से रात-रातभर लोग जागते
क्या होता है दंगा ?
इसका चेहरा कैसा होता ?
क्या खाता यह, कैसे चलता है ?
कैसे हंसता, रोता गाता...
क्या बतलाऊं तुमको गोलू
इसका कोई सिर न सिरा है
हाथ-पांव मुंह नाक आंख गायब हैं इसके
इसके कोई सगे न संबंधी हैं
मार-काट के सिवा न इसको
शब्द दूसरा सूझा करता...
सोचो, हम क्या कर सकते हैं ?

प्यार सभी से कर सकते हैं
प्यार करें भई प्यार करें ।...
हिलमिल करके प्यार करें।
हम सब बच्चे प्यार करें ।...

प्रेम शंकर रघुवंशी की यह कविता बच्चों पर ज्यादाती है। यह ठीक वही प्रक्रिया है जिसके लिए दंगे करने वालों को आप कोसते हैं। उपदेशात्मकता और आप्त वचनों से भरी हुई यह रचना दरअसल कविता है भी नहीं, आप इसे गद्य काव्य या चाहे जो कह लें। चकमक को ऐसे आग्रहों को छोड़ना होगा।

विज्ञान पत्रिका में इतना और इतनी तरह का साहित्य हो तो वह सम्पूर्ण पत्रिका कही जाने की हकदार है। पत्रिका के नियमित स्तंभों में प्रयोगशाला, माथापच्ची, सारेगामा और चित्र पहेली है। विज्ञान के बालकोपयोगी प्रयोगों को विस्तार से सुन्दर चित्रों के साथ यहां देखा जा सकता है। ठीक इसी तरह वैज्ञानिकों, महान वैज्ञानिक उपलब्धियों पर अक्सर सामग्री होती है। और यह वैज्ञानिकता मूलतः चयन और प्रस्तुतीकरण में भी होती है। भारत धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र है लेकिन कितने स्कूलों में ईद, मोहरम या बैसाखी की जानकारी दी जाती है। क्रिसमस के साथ ग्लैमर न होता तो शायद यह भी इसी श्रेणी में आ जाता। नवम्बर 2005 अंक में दीपावली और ईद पर रोचक लेख हैं तो चांद के बारे में वैज्ञानिक जानकारी भी। यह वैज्ञानिकता ईद पर लेख में भी है, दृष्टि सम्पन्नता - “क्या तुम्हारा कोई दोस्त है, जो ईद या दीपावली पर तुमसे मिलने आता हो ? अगर नहीं, तो जल्दी से एक दोस्त बनाओ, जिसके घर इन त्यौहारों पर तुम मिलने जा सको और वो भी तुम्हारे यहां आ सके। फिर तुम भी मेरी तरह दोनों त्यौहारों का भरपूर मजा ले सकोगे।” वैज्ञानिकता और भी है वह यह कि ईद उल फितर और ईदुलजुहा में क्या अन्तर है इसे स्पष्ट किया गया है तथा कैलेण्डर बनाकर चांद के हिसाब से बारह महीने भी लिख दिए हैं। अपरिचय से दूरियां बढ़ती ही हैं। एक स्तम्भ जो पुराने स्तम्भों में दिखाई देता है किन्तु इधर नहीं आ रहा, वह है ‘सवालीराम’। सवालीराम जी बच्चों के प्रश्नों के उत्तर देते थे। किसी जमाने में मोरारजी देसाई ‘नंदन’ में मेरे बचपन में संभवतः कन्हैयालाल नंदन ‘पराग’ में और हरिशंकर परसाई ‘देशबन्धु’ में यह काम करते थे। अब यह प्रवृत्ति बढ़ाने में कोई रुचि नहीं लेता। जबकि चकमक के पास तो पूरी टीम है और भोपाल में विद्वानों की कमी भी नहीं है।

कुछ और बातें हैं जो दूसरी बाल पत्रिकाओं में दुर्लभ हैं। एक है पुस्तक अंश और चर्चा। आमतौर पर नयी पुस्तकों की चर्चा हर कहीं होती ही है लेकिन यहां किसी उल्लेखनीय किताब (चाहे हम उसे बड़ों की किताब मानें) का अंश होता है। पिछले अरसे में जिन

किताबों के अंश और उनके लेखकों के बारे में बच्चे जान पाए हैं, वे हैं - ‘आज के अतीत’ (भीष्म साहनी), ‘मेरा दागिस्तान’ (रसूल हमजातोव), ‘समरहिल’ (ए.एस. नील), ‘चार्ली चैप्लिन’ (गीत चतुर्वेदी), ‘तोतो चान’ (तेत्सुको कुरोयानागी), ‘सौन्दर्य की नदी नर्मदा’ (अमृतलाल बेगड), ‘प्रेमचन्द: कलम का सिपाही’ (अमृतराय) ‘चीड़ों पर चांदनी’ (निर्मल वर्मा), ‘मोगली के कारनामे’ (रूडयार्ड किपलिंग) ‘पिप्पी’ (एस्ट्रिड लिंडग्रन) और करुक्कु’ (भामा)। ऐसी ही कोशिश एक और है, वह है शमशेर बहादुर सिंह, नागार्जुन, भवानी प्रसाद मिश्र, केदारनाथ अग्रवाल, सर्वेश्वर जैसे कवियों की कविताओं को पोस्टर रूप में अथवा वैसे भी आकर्षक सज्जा के साथ छापना। साहित्य प्रेम की नर्सरी में ऐसा ही होता है न।

एक और बात नायकों के संबंध में। नायकलोलुप हमारे समाज में बच्चों को क्या विकल्प दें ? शाहरूख या सचिन ? आप कह दें, यह जरूरी ही नहीं है। लेकिन सवाल तो है। इसी सवाल से जूझते हुए चकमक अब बिल्कुल भुला दिए गए भारत के पहले अन्तरिक्ष यात्री राकेश शर्मा से मिलवाती है तो ज्ञान चतुर्वेदी जैसे बड़े डॉक्टर - उपन्यासकार से ‘मैं क्या बनना चाहता था’ जैसा रोचक संस्मरण लिखवाती है। हां, शाहरूख या सचिन के अलावा भी विकल्प हैं, हो सकते हैं। छपाई और प्रस्तुतीकरण में पत्रिका स्तरीय है। भाषा के पक्ष पर थोड़ा परिश्रम और चाहिए। अप्रैल 2006 अंक में एक ही पृष्ठ पर सम्पादक अंजलि नरोना का नाम दो तरह से छपा है ‘नरोना’ और ‘नरोन्हा’ चित्र वाकई शानदार हैं, लेआउट भी, मास्टर जी छड़ी उठाए, गांधी टोपी, नेहरू जैकेट पहने अ आ इ ई पढ़ा रहे हैं जिस छात्र के लिए कविता है वह तीसरी चौथी का प्रतीत होता है। यह ज्यादाती है। अध्यापक का नाम लेते ही मानस में अगर गांधी टोपी पहने बुजुर्ग आते हों तो ठीक, बाकी थोड़ा दुरस्त होना चाहिए।

चकमक पर यह चर्चा समाप्त की जा सकती है यह याद दिलाते हुए कि अब बच्चों के लिए इसमें समाचार नहीं आ रहे और कहीं भी, कभी भी किसी अंक में ‘संदर्भ’ या ‘स्रोत’ का परिचय नहीं जबकि बारहवीं तक आते आते चकमक के पाठक को इनकी जरूरत होनी चाहिए। दृश्य इतना भी निराशाजनक नहीं है कि रेगिस्तान सा लगे। कमियां जरूर हैं और इनसे हमें ही जूझना है। यह विश्वास कीजिए इसे पढ़ने वाला बालक ‘आदर्श नागरिक’ तो नहीं बनेगा। ◆

पल्लव
17, ग्लास फैक्ट्री, आईस फैक्ट्री,
सुन्दरवास, उदयपुर -313001